लेखकनामा

अनिल यादव

संपर्क : 9452040099

अगर कहानी, उपन्यास, कॉलम, स्क्रिप्ट, विज्ञापन, खबरें लिखना काफी है तो मैं एक लेखक हूं। वैसे ही जैसे राजस्व प्रशासन के आखिरी छोर की कड़ी लेखपाल होता है। वह आदमी की आजीविका और भावनाओं से जुड़ी सबसे जाहिर चीज धरती के टुकड़े की कानूनी स्थिति और लगान का मूल्यांकन करता है। उसकी कलम से लिखी रपट के आधार पर सरकार आपको बताती है कि इस साल धान या गन्ने का रकबा कितना है और अनुमानित उपज देश का पेट भर पाने के लिए काफी होगी या नहीं। लेकिन लेखपाल को कोई प्रेमचंद या गोर्की नहीं कहता। मैं भी लेखक नहीं हूं। अगर होता तो कहानी के उस्ताद ज्ञानरंजन मेरी यात्रा पुस्तक की पीठ पर यह क्यों लिखते कि अनिल भविष्य का लेखक हो सकता है। स्वयं प्रकाश ऐसा क्यों लिखते कि मैने कहानी के आकाश में एक तारे की तरह प्रवेश भर किया है। मेरी दोस्त जर्मनी की यायावर लेखिका इडा हैट्टेमर हिगिन्स यह क्यों लिखती कि मैं लेखक हो सकता हूं लेकिन अपनी प्रतिभा को बरबाद कर रहा हूं। काशीनाथ सिंह को अक्सर ऐसा क्यों लगता कि...ये तो गया काम से।

लिटरेचर में मुझसे दूर तक गए ये लोग सच कहते हैं। मैं लेखक होने के रास्ते में हूं। उस मोड़ पर जहां सारा रोमांस हवा हो जाता है। एक सतत बेचैनी बाकी सब कुछ को झकझोरते हुए मटमैली आंधी की तरह मन के अंतरिक्ष में फैलती जाती है। लिखना आपके जीवन के पुराने ढर्रे और प्रिय चीजों की कुर्बानी मांगने लगता है। दे सकते हो तो दो और अंधेरे में टटोलते, गिरते आगे बढ़ो वरना अपनी डेढ़ किताबों और अपराधबोध के साथ गाल पर उंगली धरे राइटरनुमा पोज देते हुए फोटू खिंचाते रहो। वैसे जियो जैसे कोई प्रेमी बाप के दबाव में दहेज लेकर अनजान सुशील कन्या के साथ जीता है।

लिखना एक रहस्यमय काम है इसलिए उसके बारे में बात करने वाला अक्सर पांच अंधों द्वारा हाथी के वर्णन जैसी मुग्धकारी अबोधता में भटकने लगता है। अगर अपने लेखन पर बोलना हो तो मजा बहुत आता है लेकिन सामने वाले के हाथ कुछ नहीं लगता। ये दुनिया आदमी के भीतर कैसी अनुभूतियों के रूप में दर्ज हुई है, इसे कागज पर उतार पाना ही लिखना है। बाकी सब सलमे सितारेबाजी है। दिक्कत यह है कि जिन्दगी का चलन लेखन के खिलाफ है। बचपन से हमें सचाईयों को भुलाकर खुद को ऐसे व्यक्त करना सिखाया जाता है जो समाज में सर्वाइवल के लिए जरूरी होता है। इस प्रैक्टिस के कारण हम खुद को ऐसे

तहखाने में बंद कर देते हैं जहां से पूरे जीवन के दौरान पश्चाताप, विस्मय और मृत्यु के एकांत में सिर्फ कुछ घंटों के लिए बाहर आ पाते हैं।

कम से कम एक बार मैने इस तहखाने से बाहर आने की गंभीर कोशिश की थी लेकिन किसी और अतल अंधेरी खाई में जा गिरा। 1999 में अंतिम महीनो में मैंने अमर उजाला के मालिक, संपादक अतुल माहेश्वरी को एक अर्जी दी कि मैं लेखक बनने के लिए अनिश्चितकालीन छुट्टी चाहता हूं। वे हंसे, कई लोगों को अप्लीकेशन दिखाकर हंसाया लेकिन मेरी जिद के कारण यह कहते हुए छुट्टी दे दी कि फिर नौकरी की जरूरत हो तो आ जाना। मैने पीएफ का पैसा निकाल कर दिल्ली के दरियागंज के फुटपाथ से दुनिया के उन लेखकों की दो बोरा किताबें खरीदीं जिन्हें किशोरावस्था से पढ़ना चाहता था। अपने दोस्त शाश्वत के पास चंडीगढ़ गया। वह दुनिया में इकलौता आदमी था जो मुझ पर यकीन करता था और मेरे लेखक बनने के प्रोजेक्ट का सच्चे दिल से नेतृत्व करना चाहता था।

शाश्वत ने अपने मकान में मुझे अलग कमरा दिया। मेरे लिए आलमारी, मेज, कुर्सी, कागज, स्याही की स्टाइलिश दवात के अलावा एक ट्रांजिस्टर भी खरीद कर लाया। नौकर को सख़्त निर्देश था कि अगर मैं कुछ लिखता दिखूं तो कमरे में कदम न रखे। उसने वे सारे संभव इंतजाम किए कि मैं हर तरफ से निश्चिंत होकर लिख और पढ़ सकूं। दस बारह दिन मैने कमरा सजाने में लगाए। कुर्सी पर बैठकर, शिवालिक की पहाड़ियां देखते हुए सादे कागजों पर तरह-तरह के हस्ताक्षर और उन्हें घेरे में लिए फूल पत्तियां और चीलगोंजर बनाता रहा। फिर न जाने क्या हुआ कि कुंभकरण की तरह सोने लगा। सोलह-अठारह घंटे लंबी नींद। शाम को थोड़ी देर के लिए उठकर सबसे पास के बार में जाता था और देर रात लौटकर फिर सो जाता था। यह सिलसिला चार महीने चला जिसमें मैने एक पंक्ति भी नहीं लिखी। शाश्वत घबरा गया। डाक्टर को दिखाया गया तो पता चला एक्यूट डिप्रेशन है जिसका नींद से बेहतर और कोई इलाज नहीं है। थोड़ा ठीक हुआ तो खिलौना गाड़ी का चस्का लग गया। कालका से बैठकर शिमला, एक दिन वहां रूक कर वापस कालका। ज्यादातर किताबें मैने उस ट्रेन को घेरे में लिए सुंदर भू-दृश्य में बैठकर पढ़ीं लेकिन कुछ लिख नहीं पाया। मेरे पास लिखने को कुछ था ही नहीं। अगर रहा भी हो तो उसका सोता बंद था।

मेरे मन में एक लंबी अंधेरी सुरंग है जिसकी एक दीवार कल्पना और एक दीवार स्मृति से बनी है। सब कुछ इस सुरंग से दिल की धड़कन की लय पर गुजरता है और दूसरे छोर पर बिल्कुल नए रंग रूप में प्रकट होता है। इसी प्रवाह में से मैं लिखने का एक विषय चुनता हूं। अगर विषय में इतना दम है कि वह मेरी इच्छा शक्ति का स्विच ऑन कर काम पर लगा सके तो लिखा जाता है वरना वापस उसी सुरंग में समा जाता है। जब अलहदीपने के कारण अच्छे विषय का दम घुटने लगता है तो वह फंतासी की लंबी रील में बदलकर सोने नहीं देता। अक्सर एक बिंब आता है कि मैने एक पूरा उपन्यास मन से सरकाकर हाथ की उंगलियों के पोरों पर इकट्ठा कर लिया है। एक योगी की एकाग्रता से खुद को संयोजित कर मैं कंप्यूटर के की-बोर्ड पर

पंखो से फड़फड़ाते हाथ सिर्फ दो बार रखता हूं और सामने स्क्रीन पर अक्षर मधुमक्खियों की तरह उड़ते हैं जो जरा सी देर में किताब में बदल जाते हैं। जिस विषय के साथ ऐसा होता है मैं समझ जाता हूं यह कभी नहीं लिखा जाएगा।

कल्पना के जंगली घोड़े मेरे भीतर सदा से हिनहिनाते थे और उनकी जैविक उपस्थिति मैं महसूस करता था। बाहरी दुनिया में उनकी दौड़ विचित्र ढंग से शुरू हुई थी। मेरे नाना के घर के पिछवाड़े के सीवान का नाम है सोनही जहां एक मिडिल स्कूल है। मैं और मेरा छोटा भाई सुनील हर सुबह उस स्कूल के फील्ड में यूं ही टहलते हुए वहां पड़े सारे कागज बटोर कर एक कुंएं की जगत पर इकट्ठा करते थे। ये कापियों पर कवर के रूप में चढ़ाए गए अखबारों और पत्रिकाओं के पन्ने होते थे जिन्हें हम बड़े मनोयोग से घर से मां द्वारा बुलाए जाने तक पढ़ते और चकित होते थे। किसी चिंदी से मिली एक जानकारी हमारी जिज्ञासा को उकसा देती थी लेकिन आगे पढ़ने को और कुछ नहीं होता था लिहाजा उसे कल्पना से जोड़ कर पूरा करने के अलावा और कोई रास्ता नहीं था। उन कागज के टुकड़ों के आधार पर सारी दुनिया के बारे में हम लोगों ने ऐसी-ऐसी कहानियां बना रखी थीं कि अगर उनसे संबंधित लोग सुन पाते तो गश खा जाते। उदाहरण के लिए कोलम्बस बहुत लंबा था और समुद्र में जब जहाज तेजी से चलने लगता था तो डर कर बस-बस चिल्लाने लगता था। रद्दी कागजों का ढेर हमारा ब्रह्मांड था जिसमें हम कल्पना के घोड़ों पर सवार होकर मनमौजी राजकुमारों की तरह भटकते थे। अब भी बरसात में सड़ते कागज की महक मुझे अपने साथ उड़ाकर सोनही के मिडिल स्कूल में छोड़ आती है। इससे भी बहुत पहले से घर में रखे बक्सों की चीजें चोरी से देखना और उनके आधार पर उन्हें बरतने वाले लोगों की जिन्दगियों का अनुमान लगाना मेरा प्रिय काम हुआ करता था।

बहरहाल अभी तो मैं सिर्फ यह चाहता हूं कि मुझे युवा लेखक न कहा जाए। लेखक का उम्र से कोई रिश्ता नहीं होता और मैं तो लेखक ही नहीं हूं। अधिक से अधिक मुझे स्मृति और कल्पना की सुरंग के मुहाने पर रंगीन मछलियां पकड़ने की घात में बैठा आदमी कहा जा सकता है। दूसरे मैं चाहता हूं कि मेरे परिचय में कहीं यात्रा वृत्तांत "वह भी कोई देस है महराज" का जिक्र न किया जाए। हद से ज्यादा प्रशंसा मुझे उदास कर देती है। नार्थ ईस्ट की यात्रा को लिखने की मुझमें इच्छा शक्ति ही नहीं थी इसीलिए दस साल लगे लेकिन यह किताब अब मेरे पीछे भूत की तरह लगी हुई है। बहुत हो गया, मैं चाहता हूं यह किताब जल्दी से मेरे डेड पास्ट का हिस्सा बन जाए और मैं उससे उबर कर कुछ नया करने की सोच सकूं। माफ कीजिएगा जब अभी लेखक ही नहीं हूं तो कैसा लेखकनामा।

(**परिचय :** अनिल यादव पेशे से पत्रकार एवं स्वतंत्र लेखक हैं। अपनी घुमक्कड़ प्रवृत्ति एवं लेखन से हिंदी पाठकों के बीच अनिल यादव की विशिष्ट पहचान है।)